सद्बोध-मण्डन-मिदं परमात्म-तत्त्वं,
मुक्तं विकल्पनिकरैरखिलैः समन्तात्।
नास्त्येष सर्व-नय-जात-गत-प्रपञ्चो
ध्यानावली कथय सा कथमत्र जाता।।१२०।।

आहाहा! जरा सूक्ष्म बात है। कहते हैं, यह धर्मात्मतत्त्व है। अन्दर आत्मतत्त्व है, वह परमात्मतत्त्व ही है। उसकी शक्ति और स्वरूप परमेश्वर परमात्मस्वरूप है। ऐसे परमात्मतत्त्व में **सम्यग्ज्ञान का आभूषण ऐसा यह परमात्मतत्त्व...** है। वह सम्यग्ज्ञान के

स्वभाववाला परमात्मतत्त्व है। ऐसा आत्मा है। उसके सम्यग्ज्ञान की शोभा से यह परमात्मतत्त्व है। उसमें पुण्य और पाप, दया और दान, काम और क्रोध—ये परिणाम / विकल्प उसमें है ही नहीं। आहाहा! चैतन्यतत्त्व को पहुँचना कठिन काम है। **सम्यग्ज्ञान का आभूषण...** है वह तो। सम्यग्ज्ञान की शोभावाला तत्त्व है। उसमें पुण्य-पाप के विकल्प का समूह है नहीं। उसे यहाँ आत्मा कहते हैं, और उस आत्मा की अन्तर्दृष्टि करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन-धर्म की पहली शुरुआत कहते हैं। आहाहा!

सम्यग्ज्ञान का आभूषण ऐसा यह परमात्मतत्त्व समस्त विकल्प समूहों से सर्वतः मुक्त... है। कोई भी विकल्प—दया, दान, व्रत, भक्ति, गुण-गुणी के भेद का भी विकल्प / राग, उस वस्तु में नहीं है। आहाहा! जिसे आत्मा कहते हैं, जिसे आत्मा-परमात्मा कहते हैं, जो आत्मा नवतत्त्व में भिन्न आत्मा कहते हैं; उस आत्मा की दृष्टि करने से उस आत्मा में विकल्प का राग, विकल्प की, राग की वृत्ति का समूह उसमें नहीं है। आहाहा! ऐसा कठिन है। यह तो बाहर से यह करो... यह करो... यह क्रिया करो... यह सब तो राग की क्रिया है। इनमें धर्म मनवाया है, (यह) मिथ्यात्व का सेवन (है और) वह सब संसार में भटकने का लक्षण है।

यहाँ तो यह कहते हैं कि इसकी शोभा तो सम्यग्ज्ञान की शोभा से है। विकल्प का कोई भी समूह उसमें नहीं है। अस्ति-नास्ति की है। ऐसे आत्मा को अन्दर पहिचानना। ऐसे आत्मा को अन्दर पहिचानकर श्रद्धा करना, इसका नाम धर्म की पहली शुरुआत है। आहाहा! ऐसा काम है। है? **समस्त विकल्प समूह...** विकल्प अर्थात् राग की वृत्ति; कोई भी गुण-गुणी भेद का विकल्प / राग या दया, दान के विकल्प का राग। यह ज्ञान की शोभावाला तत्त्व है, उसमें विकार है ही नहीं। आहाहा! यह विकल्प है, वह तो मलिनता है और प्रभु तो ज्ञान की शोभावाला तत्त्व है। आहाहा!

अनन्त काल से यह बात जँची नहीं। चौरासी के अवतार में भटककर मरा है। साधु हो, बाहर का त्यागी हो तो भी उस राग की क्रिया को अपनी मानता है। जो राग, स्वरूप में नहीं है। आहाहा! यह दया, दान, व्रत और भक्ति, वह तो विकल्प / राग है। वह **समस्त विकल्प समूह...** ज्ञान की शोभावाला तत्त्व ज्ञान से भरपूर, अकेला ज्ञान से भरपूर शोभावाला तत्त्व, उसमें अज्ञान और विकल्प, विकार के समूह का अभाव है। यह प्रतिक्रमण है।

इसका नाम प्रतिक्रमण है। आहाहा! बाकी तो शाम-सवेरे पहाड़े बोल जाए। प्रतिक्रमण कर ले, मिथ्यात्व है। आहाहा! एक बात (हुई)। दूसरी।

सर्व नयसमूह सम्बन्धी यह प्रपंच... आहाहा! भगवान आत्मा परमात्मतत्त्व है, वह ज्ञान से शोभावाला है। उसे विकल्प से प्राप्त करना - ऐसी वह चीज़ नहीं है। नय, नय का विकल्प, व्यवहारनय का विकल्प, निश्चयनय का विकल्प। आहाहा! विकल्प, वह राग की वृत्ति है। **सर्व नयसमूह सम्बन्धी यह प्रपंच...** आहाहा! ज्ञानस्वरूपी भगवान में, नयसमूह का तो प्रपंच है। आहाहा! इस विकल्प की वृत्ति में निश्चय के-व्यवहार के आश्रित... यह सब विकल्प की वृत्तियों का समूह, यह सब ज्ञान की शोभावाले तत्त्व में प्रपंच है। आहाहा! ऐसा तत्त्व है।

तो फिर वह ध्यानावली इसमें किस प्रकार... होगी? आहाहा! यह न्याय देकर बात की है। सूक्ष्म बात है, प्रभु! सम्यग्दर्शन-प्रथम धर्म, उसका जो विषय चैतन्य परमात्मतत्त्व ज्ञानभूषण ऐसा जो आत्मतत्त्व, उसमें विकल्प का समूह तो नहीं, परन्तु व्यवहारनय और निश्चयनय के विकल्पों का प्रपंच भी जिसमें नहीं। आहाहा! है? मूलमार्ग है। वाड़ा में तो यह चले, ऐसा नहीं है। यह बात चलती नहीं। सम्प्रदाय में तो क्रियाकाण्ड, राग की क्रिया—यह करो... यह करो.. यह करो.. यह करो.. यह करो। यह मिथ्यात्व का सेवन है। जो स्वरूप में नहीं, ऐसे राग का सेवन, वह मिथ्यात्व का सेवन है। आहाहा! और जिसमें राग और विकल्प नहीं, ऐसा ज्ञान के स्वभाववाला तत्त्व, उसकी सेवा, वह सम्यक्तत्त्व है। आहाहा! सूक्ष्म है। मार्ग बहुत सूक्ष्म, बापू! दुनिया अभी चलती है, उससे पूरा प्रकार अलग है।

जब ज्ञानस्वभाववाला तत्त्व अर्थात् सर्वज्ञस्वरूपी पूर्ण ज्ञानस्वभाववाला तत्त्व आत्मा पूर्ण ज्ञान से भरपूर, अनन्त-अनन्त अपरिमित ज्ञान जिसका स्वभाव है। ऐसे तत्त्व से शोभित आत्मा को सर्व विकल्प के समूह का तो अभाव है, परन्तु व्यवहार और निश्चय के विकल्प का उसमें प्रपंच नहीं है। जब वह नहीं... आहाहा! तो तीसरी बात।

तो फिर वह ध्यानावली इसमें किस प्रकार उत्पन्न हुई... आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! आत्मा शुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द की पर्याय में उसका ध्यान, ध्यान करना और पर्याय की निर्मलता प्रगट करना और पर्याय की निर्मलता बढ़ाना, ऐसी पर्याय का ध्यान का विषय, वह वस्तु में कहाँ है? आहाहा! कहाँ ले गये?

पहले तो विकल्प समूह का निषेध किया। ऐसा वह तत्त्व ही है, भगवान परमेश्वरस्वरूप ही है। भगवत्स्वरूप में जगत की ओर का विकल्प अर्थात् राग का समूह तो नहीं, परन्तु उसके व्यवहार और निश्चयनय के विकल्प के राग का प्रपंच भी नहीं है। जब वह नहीं है तो फिर ऐसा एकरूप जो ज्ञानस्वरूप भगवान, उसमें ध्यानावली अर्थात् ध्यान की श्रेणी-धारा... आहाहा! ध्यान की श्रेणी की धारा एक के बाद एक, एक के बाद एक शुद्धि, उस शुद्धि की धारा, वह पर्याय है। वह पर्याय, द्रव्य में कहाँ है? आहाहा! चन्दुभाई! ऐसा तत्त्व है। सूक्ष्म पड़े, बापू! क्या हो? कभी किया नहीं। अनन्त काल परिभ्रमण में गया और यह समझे बिना वहाँ का वहीं चौरासी के अवतार में जानेवाला है, परिभ्रमण में भटकने। कौआ, कुत्ता, पशु में अवतार। आहाहा!

तीन प्रकार कहे। यह (आत्मा) तो ज्ञान और आनन्द से शोभित तत्त्व है। उसमें राग के विकल्पों का समूह तो नहीं, परन्तु नय के विकल्पों का प्रपंच उसमें नहीं, तो ध्यानावली-ध्यान की श्रेणी शुद्ध-शुद्ध, वह ध्यान की श्रेणी शुद्ध, पर्याय की शुद्धि बढ़े, शुद्धि बढ़े... शुद्धि बढ़े... ऐसी शुद्धता की धारा, वह पर्याय है। वह द्रव्य में कहाँ है? आहाहा! भारी कठिन काम।

मुमुक्षु : ऐसी बात अफ्रीका में नहीं मिलती।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात ऐसी है। दुनिया को मार्ग मिलता नहीं। बेचारे धर्म के नाम पर कहीं भटकते हैं। दया, व्रत, तप, अपवास... आहाहा! मर गया उसी और उसी में। प्रतिमा ले लो, दो प्रतिमा लो, चार प्रतिमा लो, व्रत लो। पहला व्रत, दूसरा व्रत, परन्तु मूलतत्त्व नहीं मिलता, उसमें व्रत आये कहाँ से? जो चीज़ है, जिसमें स्थिर होना है; वह चीज़ दृष्टि में आये बिना स्थिर किसमें होना? स्थिरता, वह व्रत है।

जो चीज़ अन्दर है, अनादि-अनन्त नित्यानन्द का दल, ध्रुव, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त स्वच्छता और अनन्त वीर्य, अनन्त प्रभुता का प्रभु स्वयं है। आहाहा! उसकी शोभा उसके गुण से है। यहाँ ज्ञान से कही, परन्तु ज्ञान कहने से पूरे अनन्त गुणों से उसकी शोभा है। उसमें विकल्प के जाल, राग कहाँ से आया? भाई! उसमें राग कहाँ है? वह तो नहीं, परन्तु इस यह निश्चयनय से ऐसा है, व्यवहारनय से ऐसा है - ऐसे विकल्प के राग का प्रपंच जाल भी उसमें कहाँ है? यह तो ठीक। यह तो राग आया। यह

तो दोनों राग आये, परन्तु विकल्प का समूह और नय का प्रपंच यह तो विकल्प / राग आया। अब यहाँ तो प्रभु शुद्ध चैतन्य ज्ञान-आनन्द से शोभता ध्रुव चैतन्य में उसके ध्यान के पर्याय की ध्यान की धारा, निर्मल धारा पर्याय, वह पर्याय की श्रेणी भी ध्रुव में कहाँ है ? आहाहा ! ऐसा मार्ग है, बापू ! क्या हो ? अनादि से सुनने को मिलता नहीं। सुना नहीं, मिला नहीं।....आहाहा !

यहाँ करोड़ोंपति बनिया हो, मरकर ढोर होता है। बहुत से पशु होनेवाले हैं। नरक में नहीं जाएँ, क्योंकि माँस और अण्डा यह नहीं (खाते)। देव और मनुष्य में तो जाए नहीं, क्योंकि पुण्य नहीं। धर्म तो है नहीं। आहाहा ! ये अरबोंपति और करोड़ोंपति सब पशु में जानेवाले हैं। अन्तिम चौदह बोल आये हैं न ? उन सबमें पशु कहा है। पशु... पशु... पशु... फिर एकेन्द्रिय में जाए, निगोद में जाए या पंचेन्द्रिय में जाए परन्तु सब पशु हैं, तिर्यंच हैं। आहाहा ! तत्त्व का बहुत-बहुत विरोध करे, वे निगोद में लहसुन और प्याज में जाते हैं। आहाहा ! इसे तो खबर भी नहीं होती कि मैं तत्त्व का विरोध करता हूँ या नहीं। वहाँ 'पशु' शब्द लिया है। पशु का मूल अर्थ ऐसा है, पशु - पश्यति इति बधति इति पशु। कर्म से और विकार से बँधे, वह पशु है। आहाहा !

भगवान आत्मा अबद्धस्वरूप है, उसे बन्धन के भाव से लाभ मानना, उस विकल्प के जाल से लाभ मानना, वह मिथ्यात्वभाव, वह पशु में जाने का लक्षण है। आहाहा ! बहुत विराधना होवे तो निगोद में जाए, साधारण विराधना होवे तो पंचेन्द्रिय ऊँट, गाय, भैंस, गिलहरी हो। भटके वहाँ से मरकर। आहाहा ! देखो न, इस रास्ते में अभी कुत्ते मर जाते हैं। रास्ते में बड़े-बड़े कुत्ते मरे हुए सड़क पर पड़े होते हैं। ट्रक सिर पर घूम जाता है। हो गया (भव पूरा), फिर मरकर बेचारे कहीं पशु में जाएँ। माँस खाते हों तो नरक में जाएँ। आहाहा ! आत्मा तो अनादि-अनन्त है। यह देह छूटा तो कहीं आत्मा नष्ट होता है ? आत्मा वहाँ से जाता है और यहाँ पशु था परन्तु भान तो कुछ था नहीं। आहाहा ! रास्ते में मरे हुए पशु पड़े होते हैं। आहाहा ! आत्मा कहीं भटकता था। ऐसे अनन्त भव (किये)।

चैतन्य की शोभा ज्ञान और आनन्द से है। ज्ञान कहने से वहाँ विकल्प नहीं, ऐसा कहना है। सर्वज्ञस्वभावी है, पूर्ण सर्वज्ञस्वभावी है। ऐसे परमात्मतत्त्व में बाहर की जितनी राग की सब वृत्तियाँ (उत्पन्न होती है), वह सब विकल्प का समूह कहलाता है। स्त्री

सम्बन्धी, पुरुष सम्बन्धी विकल्प, व्यापार सम्बन्धी, धन्धा सम्बन्धी, पैसा सम्बन्धी... आत्मा के अतिरिक्त दूसरे परपदार्थ सम्बन्धी जितने विकल्प उठते हैं, वह सब विकार-राग है। आहाहा! आत्मा सम्बन्धी में भी नय के विचार आवें, वह भी प्रपंच है, कहते हैं। आहाहा! यह तो ठीक, परन्तु शुद्धचैतन्य शुद्धनय जो चैतन्यद्रव्य है, उसका जो ध्यान होता है, ध्यान की धारा-शुद्धता की धारा, मोक्षमार्ग की पर्याय धारा, वह भी ध्यानावली / ध्यान की श्रेणी, वह भी स्वरूप में कहाँ है? वह तो व्यवहार का विषय है। त्रिकाली वस्तु निश्चय का विषय है। यह सम्यग्दर्शन का विषय तो त्रिकाली ध्रुव है। ध्यान की धारा, वह भी कहीं सम्यग्दर्शन का विषय नहीं है। आहाहा! ऐसा सुनना क्या? पूरे दिन... अब इसे यहाँ कहना कि ध्यान की धारा की परिणति भी तुझमें नहीं है। वहाँ दृष्टि कर न! आहाहा!

वस्तु जो ध्यान का ध्येय है, उस ध्येय में ध्यान की धारा नहीं है। आहाहा! ऐसा जिनेश्वर, परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतराग की ध्वनि ऐसी है। अरे रे! सुनने को मिलता नहीं। जिन्दगी पशु की तरह चली जाती है। मृत्यु के समीप जाता है। आयुष्य तो जो निश्चित है, उस समय में देह छूटना है। जितने दिन और रात्रि जाते हैं, वे सब मृत्यु के समीप जाते हैं। आहाहा! इसे (देह को) छोड़कर भटकने चला जाएगा। आहाहा! अरे! प्रभु! तुझे दया नहीं आती? तुझे तेरी दया नहीं आती?

प्रभु कहते हैं कि ध्यानावली पर्याय है, वह भी दृष्टि का विषय नहीं है। आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र तो कहीं रह गये। स्वद्रव्य के अतिरिक्त, स्वद्रव्य जो ज्ञान से शोभित चैतन्यमूर्ति प्रभु, जिसका अलंकार, चैतन्य आनन्द और शान्ति जिसका अलंकार है— ऐसा वह परमात्मतत्त्व भगवान आत्मा है। उसे कहते हैं कि बाहर परद्रव्य के सम्बन्धी का झुकाववाला राग, वह तो उसमें है नहीं परन्तु स्वद्रव्य सम्बन्धी निश्चयनय और व्यवहारनय के विकल्प, वे हैं नहीं परन्तु उसके लक्ष्य से होनेवाली ध्यान की धारा की पर्याय-वह ध्यानावली की श्रेणी भी उसमें नहीं है। आहाहा! यहाँ तक जाना। जरा भी निवृत्त नहीं होता। भटकने के रास्ते चढ़ा है। यह श्लोक उत्कृष्ट है। तीन आये न? भाई! आहाहा!

ऊपर कहा गया कि शुद्धनय ध्यानावली को कहता नहीं। वह तो व्यवहारनय कहता है। आत्मा ज्ञायक त्रिकाली ध्रुव प्रभु की ध्यान की पर्याय शुद्ध। शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... बढ़े, उस सब पर्याय को तो व्यवहारनय कहता है। निश्चयनय तो उसे

कहता ही नहीं। आहाहा! ऐसा उपदेश है। **तो फिर वह ध्यानावली...** ध्यानावली समझे? ध्यान की श्रेणी-धारा। एक के बाद एक शुद्ध परिणति शुद्ध, शुद्ध, हों! वह शुद्ध मोक्षमार्ग की पर्याय। विकल्प-नय विकल्प और पर की ओर के विकल्प तो बन्ध के कारण हैं। यह तो मोक्ष का मार्ग, (वह भी स्वरूप में नहीं है)। आहाहा!

ध्रुवधाम भगवान परमात्मा... वस्तु कठिन बहुत, प्रभु! सच्चिदानन्द सत् शाश्वत् सत् चिदानन्द ज्ञान-आनन्द से शोभित, ऐसा जो ध्रुवतत्त्व, उसमें विकल्प का तो अवकाश है नहीं परन्तु ध्यानावली भी उसमें कहाँ से आयी? उससे बाहर रहती है। ध्यानावली भी ध्येय जो है, उससे ध्यानावली तो ऊपर रहती है। आहाहा! समझ में आया? विकल्प है, वह तो राग है, दोष है, दुःख है परन्तु मोक्ष का मार्ग है, वह शुद्ध है। आहाहा! परन्तु यह ध्रुवस्वरूप भगवान जो सम्यग्दर्शन का ध्येय, जो दृष्टि का विषय ऐसी जो चीज़ है, उसमें पर्याय-ध्यानावली की पर्याय आयी कहाँ से? वह तो व्यवहार का विषय है। आहाहा! चन्दुभाई! ऐसा है। कितनों ने तो जिन्दगी में सुना भी नहीं होगा। बात सुनी नहीं होगी तो समझे कहाँ से? भटकने के रास्ते... अर र!

मुमुक्षु : ऐसा आत्मा दिखता नहीं, वह हमें जानना-पहिचानना किस प्रकार?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु दिखता नहीं, यह निर्णय किसने किया? दिखता नहीं, यह निर्णय देखनेवाले ने किया। मनसुखभाई! मैं समझता नहीं, यह किसने जाना? मैं दिखता नहीं, यह कौन कहता है? कौन जानता है यह? मैं दिखता नहीं, यह जानता कौन है? यह देखनेवाला जानता है। आहाहा! यह तो अलौकिक बातें हैं, बापू! आहाहा!

श्रीमद् ने गाथा ली है 'नाना नास्ति विचार, यही अस्ति वही सूचवे।' यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं। यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं... यह कौन निर्णय करता है? निर्णय किसने किया? किस सत्ता में निर्णय हुआ? किसकी अस्ति में यह ज्ञान हुआ? जिसकी अस्ति में ज्ञान हुआ, वह भगवान आत्मा है। आहाहा! 'करि कल्पना दृढ़ करे, नाना नास्ति विचार, पर यही सूचवे अस्ति...' निषेध करे कि मैं नहीं, मैं नहीं। किसने निर्णय किया? राग ने किया? जड़ ने किया? निर्णय किसने किया? कभी विचार किया है? अन्ध का अन्ध चला जाता है। अन्धे देखनेवाले को देखते नहीं और अन्धे को सामने करके अन्धे को देखता है। आहाहा!

दूसरे प्रकार से, यह है-यह किसमें ज्ञात होता है ? उसमें ज्ञात होता है ? यह शरीर है, वह शरीर में ज्ञात होता है ? यह स्त्री, पुत्र, देह, परिवार है, वह उसमें ज्ञात होता है ? या आत्मा की पर्याय में ज्ञात होता है ? जो पर्याय का अस्तित्व है, उसमें वह ज्ञात होता है। यह वास्तव में वह ज्ञात नहीं होता, वास्तव में तो इसकी पर्याय ज्ञात होती है। वह पर्याय भी जिसमें नहीं है। आहाहा! लॉजिक से कुछ न्याय पकड़ेगा या नहीं ?

जिसकी सत्ता में इस सत्ता का स्वीकार होता है, उस चैतन्य की पर्याय की सत्ता में यह है, (ऐसा ज्ञात होता है)। पैसा है, स्त्री है, यह पुत्र है, यह कहीं इसकी पर्याय में वह चीज़ नहीं आती। पर्याय अर्थात् अवस्था। जानने की अवस्था। त्रिकाल द्रव्य और त्रिकाल गुण तथा वर्तमान पर्याय की अवस्था; उस अवस्था में वह चीज़ कहीं नहीं आती, परन्तु वह चीज़ है - ऐसा जानता है। वह भी उस चीज़ को नहीं जानता। आहाहा! वह चीज़ तो आती नहीं, परन्तु उस चीज़ को नहीं जानता। यह जाननेवाले को जानता है। आहाहा! ऐसा है, प्रभु! यह तो वीतराग जिनेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा की यह वाणी है, बापू! लोगों ने पामररूप से निकाल डाला। एकेन्द्रिय की दया पालो, अमुक की दया पालो, यह व्रत करो, ऐसा करके जैनधर्म को पामर कर डाला है। जिसकी प्रभुता का पार नहीं, जिसकी महिमा का पार नहीं। आहाहा!

जो इस जगत में चीज़ें हैं, यह है। शरीर है, यह है। शरीर है। शरीर है, लो न। शरीर है तो उसमें शरीर को खबर पड़ती है ? शरीर है, यह शरीर को खबर पड़ती है ? इस आत्मा की पर्याय में खबर पड़ती है कि यह शरीर है, तथापि उस पर्याय में-अवस्था में यह शरीर नहीं आता। वास्तव में पर्याय शरीर को नहीं जानती। आहाहा! पर्याय, पर्याय को जानती है क्योंकि शरीर को नहीं जानती अर्थात् शरीर में तन्मय नहीं होती, तो तन्मय हुए बिना उसे जानना कहना, यह बराबर नहीं है।

यह शरीर है, वाणी है, राग है, यह पैसा-धूल है, यह मिट्टी है, मकान है, जो आत्मा की पर्याय अर्थात् अवस्था की सत्ता में ज्ञात होते हैं। ये ज्ञात होते हैं, वह आत्मा की सत्ता की अवस्था ज्ञात होती है, यह वस्तु नहीं। जिसे मुख्य करके ज्ञात होता है, उसे मुख्य करके न रखना, अन्य को मुख्य करके रखना-ऐसी भ्रमणा, यह सब चौरासी में भटकने के रास्ते हैं। जिसकी एक समय की पर्याय में यह है, सब यह है।

एक बार पर्वत पर चढ़ते थे, उतरते थे। गिरनार चढ़ते तो ऐसे नजर जाए। उतरते हुए सब दिखायी दे। उतरते हुए सब दिखायी दे। इतना आत्मा, इतने भाग में इतना सब दिखायी दे। कितने दूरी से दिखायी दे ? गिरनार के ऊपर से जैतपुर दिखायी दे। आहा! यह सब दिखायी देता है, वह क्या है ? वह दिखता है ? उसमें आत्मा की पर्याय गयी है, वह उसे देखती है ? पर्याय, पर्याय में रहकर पर्याय को देखती है। आहाहा! अरे रे! ऐसा कहाँ से करना ? निवृत्ति कहाँ से ? संसार के पाप के कारण निवृत्त कहाँ होता है ? पाप की पींजण कातता रहता है। पाप की पींजण पूरे दिन। धर्म तो कहीं रहा ? परन्तु पुण्य का भी ठिकाना नहीं होता। आहाहा! यह सब दिखता है। यहाँ तो इतना ऐसा दिखायी दिया। वास्तव में तो असंख्य प्रदेश में दिखता है। वह तो यहाँ निमित्त है। असंख्य प्रदेश में पर्याय में ज्ञात होता है। उस पर्याय में पर्याय की शक्ति से पर्याय को जानता है। पर्याय की शक्ति से पर्याय को पर्याय जानती है।

जब एक पर्याय ऐसी शक्ति को जाने, इतनी ताकतवाली, तो उस पर्याय का धारक पर्यायवान, जिसमें पर्याय का प्रवेश नहीं, जिसमें ध्यानावली का प्रवेश नहीं। आहाहा! समझ में आया ? भाषा तो सादी है परन्तु भाव भाई! आहाहा! प्रचलित भाव से अलग प्रकार है, बापू! वीतराग जिनेश्वर परमेश्वर त्रिलोकनाथ का विरह पड़ा। उसके पीछे (बाद में) जिनेश्वर के नाम से अनेक प्रकार से स्वच्छन्द मार्ग को लोगों ने सेवन किया। आहाहा! मार्ग तो दूसरा रह गया। यह मार्ग है। आहाहा! यह क्या कहा ? देखो न!

जिस पर्याय में ज्ञात होता है, वह पर्याय भी अन्दर में नहीं है, ध्रुव में नहीं है। आहाहा! परन्तु कब पाप के कारण विचार का समय मिले ? पूरे दिन पाप की पींजण करता है। आहाहा! उसका योगफल आएगा। कुदरत के नियम में वह योगफल आएगा। आहाहा! क्या आचार्यों ने संक्षिप्त भाषा में किस प्रकार सबको प्रसिद्ध किया है!! आहाहा!

प्रभु! तू तो ज्ञान अर्थात् गुण से शोभायमान है न! आहाहा! तू तो आनन्द और ज्ञान और शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता इन तेरे गुणों से शोभायमान है न! उसमें पर के विकल्पों से तुझे तो अशुद्धता और कलंक लगता है और उसमें से तुझे शोभा लगती है कि यह मैंने किया, यह मैंने किया, मैंने इसका यह किया, मैंने इसका यह किया। क्या तुझे भ्रमणा हुई है ? प्रभु! आहाहा! सूक्ष्म बातें हैं, भगवान! आहाहा!

आनन्द और ज्ञान से शोभित तत्त्व, ऐसा जो परमात्मतत्त्व स्वयं प्रभु निज परमात्मा की पर्याय में यह करूँ... यह करूँ... यह करूँ... यह करूँ... वह चीज़ तो यहाँ आती नहीं और तेरी पर्याय उस चीज़ में जाती नहीं, तो पर का करूँ, यह तो उसमें आता नहीं परन्तु पर को जानना कहना, वह भी व्यवहार है, असद्भूतव्यवहार है, क्योंकि पर में तन्मय नहीं होता। मात्र अपनी पर्याय को जानता है, यह कहना, वह सद्भूतव्यवहार है। वह भी पर्याय की धारा... आहाहा! प्रभु! तेरे ध्रुव में कहाँ से आयी? वह तो ध्रुव के ऊपर तैरती है। तेरे दृष्टि का विषय, वह कहीं ध्यानावली नहीं है। ध्यान की धारा, वह दृष्टि का विषय नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह यहाँ कहते हैं। इस गाथा के कलश में बहुत भरा है। तीन बोल कहकर तो बहुत भरा है। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रीतिभोज है, उसे लड़ाया...

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें है। परन्तु इसमें है या नहीं यह? एक परमात्म शब्द कहो तो उसमें क्या बाकी है? फिर उसे लडाना अर्थात् अनन्त गुण और अनन्त पर्यायें और ऐसा का ऐसा। वह तो ऐसा है, उसका कहने का है। आत्मा निज परमात्मा परमेश्वरस्वरूप ही है। यदि शक्ति और स्वभाव से परमेश्वर न होवे तो पर्याय में परमेश्वर अरिहन्त हुए, वे कहाँ से हुए? कहीं बाहर से परमेश्वरपना आता है? अन्दर पड़ा है, उसमें से आता है। आहाहा! उस पड़े हुए परमेश्वर में ध्यान की ध्यानावली का भी अवकाश नहीं है। आहाहा! वह व्यवहार का विषय है। आहाहा! प्रभु ऐसा कहते हैं। सूक्ष्म बात है, भाई! जँचे न जँचे, परन्तु सत्य तो यह है।

सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमेश्वर का तो ऐसा कहना है। उससे कम, अधिक, विपरीत मानेगा, वह मिथ्यात्व सेवन कर चार गति में भटकेगा। नरक और निगोद में जाएगा। आहाहा! वहाँ कोई सहारा नहीं है। वहाँ कोई सिफारिश लागू नहीं पड़ती। हमने इतना पुण्य किया था, इतना दान दिया, हमने यह किया था। यह तेरा दान-पुण्य तो कहाँ... ? ऐरण की चोरी और सुई का दान। पूरे दिन पाप के पोटले बाँधे और उसमें कभी सहज पुण्य का भाव करे, वह सुई का दान और ऐरण की चोरी। तेरे पुण्य का भी कहाँ ठिकाना है? धर्म का तो ठिकाना कहाँ है? आहाहा! यह एक श्लोक हुआ। पौन घण्टे में एक श्लोक हुआ। आहाहा! बहुत भरा है, बहुत भरा है।

द्रव्य और पर्याय तथा व्यवहार और निश्चय दोनों की बात बहुत भरी है। एक परद्रव्य के विकल्प से भरी हुई है, उससे रहित हुआ। पश्चात् स्वद्रव्य के नय और निषेध के व्यवहार के विकल्प से रहित कहा; पश्चात् स्वद्रव्य की ध्यानावली की पर्याय से रहित कहा। आहाहा! इसमें है या नहीं?

स्त्री, पुत्र, परिवार, पैसा, धन्धा तो कहीं रह गया, उसकी तो यहाँ बात भी नहीं है। उसके सम्बन्धी का जो राग होता है, वह तेरी पर्याय में है। वे चीज़ें तो उनमें रही है। वे कहाँ तेरे पास है और तेरे पास अन्दर आती है? राग होता है, उसे पहले उड़ाया। उस राग का समूह तुझमें नहीं है। पर्याय में है, वह द्रव्य में नहीं है। अन्य चीज़ तो पर्याय में भी नहीं है। आहाहा! यह क्या कहा? स्त्री, कुटुम्ब, पैसा, इज्जत, मकान, पैसा, वह तो आत्मा की पर्याय में भी नहीं। वे तो बाहर उनमें रहते हैं परन्तु इसकी पर्याय में उनके सम्बन्धी का विकल्प है, उसकी बात की है। आहाहा! विकल्प अर्थात् राग। उसके सम्बन्धी का तुझे जो राग होता है, वह तेरी पर्याय में है परन्तु वह द्रव्य में नहीं है। जहाँ पूरा परमात्मतत्त्व पड़ा है, उसमें वे नहीं हैं। एक बोल ऐसा कहा।

दूसरा बोल ऐसा कहा कि... यह निश्चय से ऐसा और व्यवहार से ऐसा, सद्भूत से ऐसा और असद्भूत से ऐसा, यह तेरे आत्मा में भेद पाड़कर ज्ञान के भेद... आहाहा! वह समूह भी प्रपंच है। आहाहा! प्रभु! वह तुझमें नहीं है। वहाँ दृष्टि कर।

तीसरा, पहले में विकल्प है, वह भी दुःखरूप है – ऐसा कहा। पहले और दूसरे दोनों विकल्प में दुःख है। और तीसरे में सुख है। तीसरे में सुख है, अतीन्द्रिय सुख है परन्तु उस पर्याय में सुखधारा... कम, बढ़ते.. बढ़ते.. बढ़ते सुख की धारा बढ़ती है, ऐसी पर्याय बढ़ती है, एकरूपता नहीं है। इस एकरूप वस्तु में वह पर्याय की धारा एकरूप वस्तु में नहीं है। आहाहा! ऐसा है। ऐसा उपदेश किस प्रकार का? आहाहा!

इसे डर नहीं लगता। उस सर्प को देखकर डर लगता है, बिच्छु को देखकर डर लगता है परन्तु भवभ्रमण कितने होंगे, उसका इसे डर नहीं लगता। कोई शत्रु छुरी लेकर मारने आवे तो डर लगता है। आहाहा! अनन्त भवों का भव करने का भाव, इसे भव का डर नहीं लगता। आहाहा! यह ८९ गाथा हुई।

गाथा-९०

मिच्छत्तपहुदिभावा पुव्वं जीवेण भाविया सुइरं।
सम्मत्त-पहुदि-भावा अभाविया होंति जीवेण।।९०।।

मिथ्यात्वप्रभृतिभावाः पूर्णं जीवेन भाविताः सुचिरम्।
सम्यक्त्व-प्रभृति-भावाः अभाविता भवन्ति जीवेन।।९०।।

आसन्नानासन्नभव्यजीवपूर्वापरपरिणामस्वरूपोपन्यासोऽयम्। मिथ्यात्वाव्रतकषाय-योगपरिणामास्सामान्यप्रत्ययाः, तेषां विकल्पास्त्रयोदश भवन्ति 'मिच्छादिट्ठीआदी जाव सजोगिस्स चरमंतं' इति वचनात्, मिथ्यादृष्टिगुणस्थानादिसयोगिगुणस्थानचरमसमयपर्यन्त-स्थिता इत्यर्थः। अनासन्नभव्यजीवेन निरञ्जननिजपरमात्मतत्त्वश्रद्धानविकलेन पूर्वं सुचिरं भाविताः खलु सामान्यप्रत्ययाः, तेन स्वरूपविकलेन बहिरात्मजीवेनानासादितपरम-नैष्कर्म्यचरित्रेण सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि न भावितानि भवन्तीति। अस्य मिथ्यादृष्टे-र्विपरीतगुणनिचय-सम्पन्नोऽत्यासन्नभव्यजीवः।

अस्य सम्यग्ज्ञानभावना कथमिति चेत्? तथा चोक्तं श्रीगुणभद्रस्वामिभिः ह्न

(अनुष्टुप्)
भावयामि भवावर्ते भावनाः प्रागभाविताः।
भावये भाविता नेति भवाभावाय भावनाः।।

तथाहि ह्न

मिथ्यात्व आदिक भावकी की जीव ने चिर भावना।
सम्यक्त्व आदिक भाव की पर की कभी न प्रभावना॥९०॥

अन्वयार्थ :—[मिथ्यात्वप्रभृतिभावाः] मिथ्यात्वादि भाव [जीवेन] जीव ने [पूर्वं] पूर्व में [सुचिरम्] सुचिर काल (अति दीर्घ काल) [भाविताः] भाये हैं; [सम्यक्त्वप्रभूतिभावाः] सम्यक्त्वादि भाव [जीवेन] जीव ने [अभाविताः भवन्ति] नहीं भाये हैं।

टीका :—यह आसन्न भव्य और अनासन्न भव्य जीव के पूर्वापर (-पहले के और बाद के) परिणामों के स्वरूप का कथन है।

मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय और योगरूप परिणाम सामान्य प्रत्यय (आस्रव) हैं; उनके तेरह भेद हैं, कारण कि '[१]मिच्छादिट्ठीआदी जाव सजोगिस्स चरमंतं' ऐसा (शास्त्र का) वचन है; मिथ्यादृष्टिगुणस्थान से लेकर सयोगीगुणस्थान के अन्तिम समय तक प्रत्यय होते हैं—ऐसा अर्थ है।

निरंजन निज परमात्मतत्त्व के श्रद्धानरहित अनासन्नभव्य जीव ने वास्तव में सामान्य प्रत्ययों को पहले सुचिर काल भाया है; जिसने परम नैष्कर्म्यरूप चारित्र प्राप्त नहीं किया है, ऐसे उस स्वरूपशून्य बहिरात्म-जीव ने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को नहीं भाया है। इस मिथ्यादृष्टि जीव से विपरीत गुणसमुदायवाला अति-आसन्नभव्य जीव होता है।

इस (अतिनिकटभव्य) जीव को सम्यग्ज्ञान की भावना किस प्रकार से होती है, ऐसा प्रश्न किया जाये तो (आचार्यवर) श्री गुणभद्रस्वामी ने (आत्मानुशासन में २३८ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:—

(हरिगीतिका)

पहले न भायी भावनायें कभी भव-आवर्त में।
भव नाश करने के लिए अब भा रहा वे भावना॥

[श्लोकार्थ :] [२]भवावर्त में पहले न भायी हुई भावनाएँ (अब) मैं भाता हूँ। वे भावनाएँ (पहले) न भायी होने से मैं भव के अभाव के लिये उन्हें भाता हूँ (कारण कि भव का अभाव तो भवभ्रमण के कारणभूत भावनाओं से विरुद्ध प्रकार की पहले न भायी हुई ऐसी अपूर्व भावनाओं से ही होता है)।

गाथा-९० पर प्रवचन

९०वीं गाथा।

१. अर्थ—(प्रत्ययों के, तेरह प्रकार के भेद कहे गये हैं—) मिथ्यादृष्टिगुणस्थान से लेकर सयोगकेवलीगुणस्थान के चरम समय तक के।

२. भवावर्त=भव-आवर्त; भव का चक्र; भव का भँवरजाल; भव-परावर्त।

मिच्छत्तपहुदिभावा पुव्वं जीवेण भाविया सुइरं।
सम्मत्त-पहुदि-भावा अभाविया होंति जीवेण।।९०।।

नीचे हरिगीत

मिथ्यात्व आदिक भावकी की जीव ने चिर भावना।
सम्यक्त्व आदिक भाव की पर की कभी न प्रभावना॥९०॥

टीका : यह आसन्न भव्य... कहते हैं कि निकट में जिसकी मुक्ति है, उसकी बात। **और अनासन्न भव्य...** कभी मुक्ति नहीं हुई, उसका भाव। वह **पूर्वापर (-पहले के और बाद के) परिणामों के स्वरूप का कथन है।** जिसकी मुक्ति निकट है, उसका कथन है और जिसकी मुक्ति बिल्कुल नहीं, उसका कथन है। आहाहा! अरे! तूने भाई! मिथ्यात्वभाव अनन्त बार सेवन किया है। आहाहा! मिथ्यात्व—विपरीत मान्यतायें। आहाहा! राग मेरा, स्त्री मेरी, पैसे मेरे, परिवार मेरा, मकान मेरा, इज्जत मेरी, पुत्र मेरा, पुत्री मेरी, दामाद मेरा... आहाहा! गहने मेरे, कपड़े मेरे, शरीर मेरा, अमुक मेरा, मन मेरा, वाणी मेरी—ऐसे मिथ्यात्वभाव को तूने अनन्त बार सेवन किया है, प्रभु! आहाहा! ऐसा उपदेश।

मिथ्यात्व,... भाव और **अव्रत,...** भाव। राग का त्याग नहीं और मिथ्यात्वसहित अव्रतभाव भी अनन्त बार सेवन किया है। **कषाय...** भी अनन्त बार सेवन की है। क्रोध, मान, माया, लोभ अनन्त बार किये हैं। अनन्त भव में अनन्त बार (किये हैं)। **और योग...** अनन्त भव में अनन्त बार योग-कम्पन किया। ये **परिणाम सामान्य प्रत्यय...** ये चार सामान्य आस्रव हैं। प्रत्यय अर्थात् आस्रव। आस्रव अर्थात् नये बन्धन के कारण। **मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय और योग'..** ये चार परिणाम नये आवरण के कारण हैं। इन्हें प्रत्यय कहा। समझ में आया इसमें? ये चार **प्रत्यय (आस्रव) हैं; उनके तेरह भेद हैं,...** तेरह गुणस्थान है न? पहले गुणस्थान से सयोगी तक। तेरह प्रत्यय हैं, तेरह आस्रव हैं। आहाहा!

प्रतिक्रमण है न? यह प्रतिक्रमण की व्याख्या है। विमुख हुआ नहीं, प्रभु! जहाँ है, वहाँ का वहीं रुका है। आहाहा! मिथ्यात्व से लेकर सयोगी केवली। तेरह गुणस्थान से ये प्रत्यय-आस्रव हैं। तेरहवें गुणस्थान में भी ईर्यापथ आस्रव आता है न? कारण कि **'मिच्छादिट्ठीआदी जाव सजोगिस्स चरमंतं' ऐसा (शास्त्र का) वचन है;...** मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगी तक, शास्त्र का वचन है। **मिथ्यादृष्टिगुणस्थान से लेकर सयोगीगुणस्थान**

के अन्तिम समय तक प्रत्यय... अर्थात् आस्रव। **होते हैं—ऐसा अर्थ है।** आहाहा! मिथ्याश्रद्धा का पाप, अव्रत का पाप, कषाय का पाप, योग का पाप—ऐसा आस्रव वह ठेठ तेरहवें (गुणस्थान) तक आता है। आहाहा! मिथ्यात्व के पाप से लेकर।

निरंजन निज परमात्मतत्त्व के श्रद्धान रहित... आहाहा! अब मिथ्यात्व की बात करते हैं। निरंजन परमात्मा-आत्मा है। निरंजन—अंजनरहित, मलरहित, मैलरहित—ऐसा भगवान चैतन्य द्रव्यस्वरूप, चैतन्य पदार्थ है। वह **निरंजन निज परमात्म...** वापस निरंजन पर परमात्मा नहीं। **निरंजन निज परमात्मतत्त्व के श्रद्धान रहित...** ऐसे परमात्मा की श्रद्धारहित। आहाहा! जिसे उसकी श्रद्धा की खबर भी नहीं। आहाहा! मेरा प्रभु निरंजन निज परमात्मा शुद्ध चैतन्य है, वह पुण्य-पाप के विकल्प से रहित है। पर्याय के भेद से भी रहित है। ऐसा निज परमात्मतत्त्व-ऐसा लिया है न? पर्याय नहीं। आहाहा! निरंजन निज परमात्मतत्त्व। निज परमात्मतत्त्व। अन्दर स्वयं भगवान है। आहाहा! परमेश्वर स्वयं आत्मा अन्दर है। ऐसे निज परमेश्वर के **श्रद्धान रहित...** उसकी श्रद्धारहित। उसकी श्रद्धा नहीं होती (और) दूसरे सबकी श्रद्धा। एक की नहीं होती। आहाहा! वररहित बारात। निरंजन निराकार परमात्मा शुद्ध-बुद्ध पूर्ण स्वरूप की **श्रद्धान रहित...**

नैष्कर्म्यरूप चारित्र प्राप्त नहीं किया है... आहाहा! अन्दर निष्कर्म (अर्थात्) पुण्य-पाप के विकल्परहित चारित्र अन्दर स्वरूप की रमणता प्राप्त नहीं की। स्वरूप की श्रद्धा तो नहीं, इसलिए स्वरूप का चारित्र भी नहीं, ऐसा कहते हैं। श्रद्धा पहले कही न? आहाहा! स्वरूप की श्रद्धा बिना चारित्र नहीं होता। स्वरूप की श्रद्धा निरंजन निज परमात्मा शुद्ध अखण्ड अभेद है, उसमें पर्याय का भी भेद नहीं। ऐसे परमात्मा की श्रद्धारहित जीव चारित्ररहित है। इसलिए चार गति में भटकते हैं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)